शिक्षा दर्शन : जरूरत और अर्थ

रोहित धनकर

शैक्षिक चिन्तन में दर्शन एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। दार्शनिक चिन्तन की यह विशिष्टता है कि वह विचारणीय विषय पर कुछ बुनियादी सवाल उठाता है। यह सवाल कही गई बात के अर्थ, किए गए दावे के पक्ष में प्रमाण देने, दावे में निहित पूर्व-मान्यताओं को समझने और उसके निहितार्थ से जुड़े होते हैं। शिक्षा विमर्श के इस अंक से हम शिक्षा दर्शन पर एक नियमित कॉलम शुरू कर रहे हैं। इस लेख में शिक्षा दर्शन की प्रकृति एवं जरूरत के सवालों पर विचार किया गया है।

कुछ आरंभिक सवाल

कोई 7-8 साल पहले एक राज्य की शैक्षिक शोध और प्रशिक्षण परिषद् (एससीईआरटी) में शिक्षाक्रम (curriculum) पर कार्यशाला चल रही थी। कार्यशाला में परिषद् और जिला स्तरीय शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान (DIET) के संकाय सदस्य थे। बात यह चल रही थी कि हम बच्चों को किस उद्देश्य से शिक्षा दे रहे हैं। कार्यशाला में अचानक उस राज्य के शिक्षा सचिव, जो कि परिषद् के निदेशक भी थे, आ गए। उन्होंने कुछ देर तक बातचीत सुनी और फिर कहा कि आज के जमाने में शिक्षा का केवल एक ही उद्देश्य होना चाहिएः गरीबी दूर करना। इसलिए शिक्षा ऐसी दें जिससे शिक्षार्थी को अपनी गरीबी दूर करने में मदद मिले। इन सचिव महोदय ने शिक्षा के उपस्थित संदर्भ में 'प्राथमिक शिक्षा' का उद्देश्य बता दिया।

बात तो ठीक थी। शिक्षा को अपने और अपने परिवार के भरण-पोषण या जीविकोपार्जन की काबिलियत तो शिक्षार्थी में विकसित करनी ही चाहिए। अतः इस बात का विरोध तो नहीं हो सकता। पर सवाल यह उठता है कि आरंभिक शिक्षा, कक्षा आठ तक की शिक्षा, में आप ऐसा क्या सिखाएं कि शिक्षार्थी कमाने के काबिल हो जाए? तुरत-फुरत और एक सरल उत्तर शिक्षा सचिव महोदय के पास उपलब्ध था। उनका मानना था कि ऐसे कौशल सिखाएं जिनकी बाजार में कीमत हो। उदाहरण के लिए, घरों में बिजली की वायरिंग और कॉल सेन्टर में काम करने की काबिलियत विकसित की जाए। उनके हिसाब से यह शिक्षाक्रम का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा हो गया। पर साफ है कि कमाई करने के स्तर तक किसी कौशल को सिखाना है तो उसमें पारंगतता का एक स्तर चाहिए। अर्थात्, शिक्षार्थी आठवीं पास करने तक बिजली की फिटिंग ऐसी करने लगे कि वह कम से कम किसी दक्ष इलेक्ट्रीशियन का सहायक बन सके। साथ ही यह सवाल भी उठता है कि दक्ष इलेक्ट्रीशियन का सहायक होने के लिए क्या-क्या सीखना होगा? केवल बिजली के तारों को दीवार में लगाने के कौशल से काम चल जाएगा या कुछ सैद्धांतिक ज्ञान भी- बिजली, उसकी चालकता, उसके खतरे आदि के बारे में चाहिए? यदि आप शिक्षाक्रम को विस्तार देकर बिजली फिटिंग का पूरा पाठ्यक्रम बना लेते हैं तो यह इस बात का वर्णन होगा कि शिक्षा के उद्देश्य (कमाई करने के स्तर तक किसी कुशलता की शिक्षा) प्राप्त करने के लिए क्या-क्या सिखाना होगा।

यदि, बतौर उदाहरण, यहां तक सहमति है तो अगले सवाल यह होंगे कि, 1. क्या यह सारी चीजें- बिजली फिटिंग, उसका सैद्धांतिक ज्ञान आदि-आदि; 6 से 14 वर्ष तक, 8 वर्ष की शिक्षा में सिखाई जा सकती हैं? 2. यदि सिखाना संभव है तो सिखाने की विधि

लेखक परिचय

रोहित धनकर जाने-माने शिक्षाविद् एवं दिगन्तर के मानद सचिव। आजकल अजीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी, बैंगलोर में शिक्षा दर्शन के प्रोफेसर हैं।

क्या होगी? इसे आप शिक्षण-पद्धति का सवाल कह सकते हैं। थोड़ी देर के लिए मान लिया कि हमने पाठ्यक्रम की सारी चीजें और सिखाने की विधियां बना ली हैं तो फिर जो सिखाया गया है उसकी जांच का सवाल भी उठेगा; अर्थात् सर्टिफिकेट देने में कैसे तय करेंगे कि जिस स्तर तक बिजली फिटिंग और बिजली का ज्ञान शिक्षार्थी के लिए हमने तय किया है वह उसने पूरा अर्जित कर लिया है? इसे आप मूल्यांकन की पद्धति का सवाल कह सकते हैं।

अर्थात्, यदि हम शिक्षा सचिव महोदय की बात मानते हैं और उनके अनुसार शिक्षा की रूपरेखा बनाना चाहते हैं तो पहले स्तर पर हमें चार सवालों के उत्तर चाहिए-

1. शिक्षा की जरूरत क्या है?
   इस सवाल पर सचिव महोदय का जवाब हैः विद्यार्थी को जीविकोपार्जन करने के लिए कौशल सिखाना।
2. ऊपर लिखे (बिन्दु 1 में) उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए क्या सिखाने की जरूरत पड़ेगी? इसके क्या उत्तर हो सकते हैं?
   इसका एक उदाहरण बिजली फिटिंग सिखाना हो सकता है।
3. जो सिखाना तय किया है उसे कैसे सिखाएंगे?
   हमने यहां कोई विधि नहीं बताई, पर यह देखा कि विधि की जरूरत पड़ेगी।
4. जो सिखाने की कोशिश की गई उसमें यह देखने की जरूरत पड़ेगी कि शिक्षार्थी ने अपनी आठ साल की शिक्षा पूरी करने तक किस स्तर की पारंगतता प्राप्त की है या नहीं की?
   यहां भी हमने कोई विधि नहीं बताई पर यह देखा कि इसकी जरूरत होगी।

लेकिन बात यहां खत्म नहीं होती, बल्कि ठीक से तो शुरू भी नहीं हुई है। यदि यह संभव हो कि 6-14 वर्ष की आयु में हम बच्चों को कमाने के स्तर तक बिजली फिटिंग सिखा सकते हैं तो उसे कितनी मेहनत करनी होगी? यह सीखने में उसका कितना समय जाएगा? उसे और कुछ सीखने का कितना मौका मिलेगा? मूल सवाल यह उठेगा कि उसको क्या-क्या छोड़ना पड़ेगा? कल्पना कीजिए कि कोई दूसरा बच्चा 6-14 वर्ष की आयु में साहित्य, विज्ञान, भाषा, गणित, भूगोल, इतिहास आदि सीखता है तो जिंदगी में आगे बढ़ने के अवसर किसके पास ज्यादा होंगे? क्या केवल बिजली फिटिंग पर ही ध्यान देना बच्चे के भविष्य में उन्नति के मौकों पर विपरीत प्रभाव डालेगा? यदि हां, तो हम गरीब बच्चों को धनवान बच्चों की तुलना में कमतर शिक्षा दे रहे होंगे। क्या यह सभी गरीबों को स्वीकार होगा कि उनके बच्चों को तुरंत गरीबी दूर करने के लिए बाजार में काम आने वाले कौशल सिखाए जाएं और पैसे वालों के बच्चों को ज्यादा खुली शिक्षा दें जिससे वे आगे जाकर राजकीय अधिकारी, मैनेजर, बेहतर व्यापारी, उद्योगपति और समाज को संचालित करने वाले लोग बन सकें? क्या गरीबी दूर करने के नाम पर हम उन बच्चों को सदा के लिए दोयम दर्जे के नागरिक नहीं बना रहे होंगे?

और भी सवाल उठते हैंः यदि किसी बच्चे को आज बिजली फिटिंग सिखा रहे हैं क्योंकि आजकल बहुत भवन-निर्माण हो रहे हैं और उसे जल्दी नौकरी या काम मिल जाएगा; पर यदि 10 साल बाद बिजली फिटिंग करने वाले लोगों की बहुत जरूरत न हो तो यह व्यक्ति क्या करेगा? यह शिक्षा के सामाजिक और आर्थिक सवालों की एक झलक भर है।

ऐसा लगता है कि शिक्षा के मामले में उद्देश्य तय करने का काम बहुत जल्दी-बाजी में और तंग-नजरिये से नहीं किया जा सकता। बहुत चीजों पर सोचना होगा। व्यवस्थित चिंतन के लिए कोई व्यवस्थित वैचारिक ढांचे की जरूरत होती है। यहां हमने केवल कुछ सवाल उठाए हैं जो शिक्षा के उद्देश्यों, उसकी विषयवस्तु और विधियों पर हैं। अभी तक उनका कोई जवाब नहीं ढूंढ़ा है।

अब कुछ दूसरी तरह के सवालों को देखते हैं। आजकल शिक्षा का अधिकार (आरटीई) की बहुत बात हो रही है। उस बहस में से कुछ सवालों को देखते हैं। शिक्षा का अधिकार कानून में अध्याय पांच शिक्षाक्रम और प्राथमिक शिक्षा

पूर्ण करने पर है। इसको समझने की कोशिश करते हैं। यह एक छोटा-सा अध्याय है, अतः यहां पूरे अध्याय का ही हिन्दी अनुवाद दे रहे हैं। मेरे पास अभी इसका आधिकारिक हिन्दी अनुवाद नहीं है, इसलिए एक काम-चलाऊ अनुवाद मैं स्वयं कर रहा हूं।

अध्याय-5

शिक्षाक्रम और प्राथमिक शिक्षा पूरी करना

29(1) प्रारंभिक शिक्षा के लिए शिक्षाक्रम और मूल्यांकन प्रक्रिया का निर्धारण एक अकादमिक प्राधिकारी द्वारा किया जाएगा। यह अकादमिक प्राधिकारी उपयुक्त सरकार द्वारा सूचित करके तय किया जाएगा।

(2) अकादमिक प्राधिकारी उपधारा (1) में उल्लेखित शिक्षाक्रम और मूल्यांकन के निर्माण में निम्नलिखित चीजों को ध्यान में रखेगाः

(क) संविधान में प्रतिष्ठापित मूल्यों से अनुरूपता;
(ख) बच्चे का सर्वांगीण विकास;
(ग) बच्चे के ज्ञान, क्षमताओं और प्रतिभा का संपूर्ण विकास;
(घ) शारीरिक और मानसिक क्षमताओं का संपूर्ण विकास;
(ड) गतिविधियों, खोज और संधान के माध्यमों से और बाल-मैत्री एवं बाल-केन्द्रित विधियों से सिखाना;
(च) जहां तक संभव हो सके शिक्षण का माध्यम बच्चे की मातृ-भाषा में होगा;
(छ) बच्चे की भय, मानसिक अभिघात और चिन्तामुक्त बनाना और उसकी अपने विचारों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति में मदद करना।
(ज) बच्चे के ज्ञान की समझ और उसके व्यवहारिक उपयोग का समग्र और सतत मूल्यांकनः

30(1) किसी भी बच्चे के लिए प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने तक किसी बोर्ड की परीक्षा की जरूरत नहीं होगी।

(2) हर बच्चे को उसकी प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने पर निर्धारित तरीके से प्रमाण पत्र दिया जाएगा।

यह शिक्षा के अधिकार कानून का दिलचस्प अध्याय है। इसकी काफी विवेचना होनी चाहिए। पर हमारे काम के लिए केवल दो बिन्दुओं पर बात करेंगे। एक, 29(2) (ख), (ग) और (घ) का क्या अर्थ है? और इनमें क्या फर्क है? तथा दो, 29(2) (ज) का क्या अर्थ है?

29(2) (ख, ग और घ) से शुरू करते हैं। यह निम्न प्रकार हैः
ख. बच्चे का सर्वांगीण विकास
ग. बच्चे के ज्ञान, क्षमताओं और प्रतिभा का विकास
घ. शारीरिक और मानसिक क्षमताओं का संपूर्ण विकास

(ख) बच्चे के सर्वांगीण विकास की सलाह देता है और (घ) शारीरिक और मानसिक क्षमताओं के संपूर्ण विकास की। क्या शारीरिक और मानसिक क्षमताएं सर्वांगीण विकास से अलग या बाहर हैं? यदि, अलग हैं तो सर्वांगीण विकास का क्या अर्थ है? बाहर हैं तो सर्वांगीण विकास में कौनसी क्षमताएं आती हैं। (ग) में बच्चों के ज्ञान, क्षमताओं और प्रतिभा के विकास की सलाह है। क्या ज्ञान, क्षमताएं और प्रतिभा मानसिक और शारीरिक क्षमताओं से बाहर या अलग हैं? कोई व्यक्ति शिक्षाक्रम और मूल्यांकन पर काम कर रहा हो तो वह इन तीनों दिशा-निर्देशों को कैसे समझे? क्या यह अनावश्यक दोहरान है? यदि हां, तो क्यों? क्या कानूनी दस्तावजों में इस तरह की लचर अभिव्यक्ति का (यदि यह लचर अभिव्यक्ति है तो) कानून के क्रियान्वयन पर बुरा असर पड़ता है? क्या यह क्रियान्वयन करने वालों

को भ्रम में डाल सकता है? इन सवालों पर आप सोचिए, मुझे इन सवालों के जवाब नहीं पता।

दूसरा उदाहरणः 29(2) (ज) में 'बच्चे के ज्ञान की समझ' के मूल्यांकन की सलाह दी गई है। अब इसके मूल्यांकन के लिए पहले इसका मतलब समझना पड़ेगा। तो 'ज्ञान की समझ' क्या चीज होती है? ज्ञान कुछ होता है, चाहे परिभाषित करना मुश्किल हो पर हम उसका मन में कुछ अर्थ बना सकते हैं। समझ भी कुछ होती है और उसका अर्थ भी मन में बना सकते हैं। पर 'ज्ञान की समझ' (अण्डरस्टेडिंग ऑफ नॉलेज) क्या चीज है? क्या इससे यह संकेत मिलता है कि 'ज्ञान बिना समझे' भी हो सकता है? क्या बिना समझे ज्ञान संभव है? क्या इसका यह अर्थ है कि 'कौनसे ज्ञान का कहां उपयोग हो?' यदि ऐसा है तो यह इस बात की बहुत ही अटपटी अभिव्यक्ति है। यदि ऐसा है तो फिर अगले वाक्यांश (और उसके व्यवहारिक उपयोग) की क्या जरूरत है?

एक और चीज जिसका आजकल बहुत जिक्र होता है वह ज्ञान में निर्माणवाद (कंस्ट्रक्टिविज्म) है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2000 में कहा गया है कि 'ज्ञान प्राप्ति प्रत्येक बच्चे की नितांत व्यक्तिगत और अनन्य (यूनिक) प्रक्रिया है और यह मूलतः निर्मिति या उत्पादन की प्रक्रिया है' (NCFSE, 2000, Page 42, NCERT)। सवाल यह उठता है कि यदि हर बच्चे का ज्ञान नितांत व्यक्तिगत है और अनन्य है तो ज्ञान का मूल्यांकन कैसे संभव है? उसे सही/गलत, उपयुक्त/अनुपयुक्त आदि कैसे कहा जा सकता है? वह तो अनन्य है, अतः जो है सो है, और उसी को स्वीकार करना चाहिए। पर ऐसा तो हम मानते नहीं। ऐसा होता तो विद्यालय या पढ़ाने की जरूरत भी नहीं होती। तो क्या हाथी के खाने और दिखाने के दांत अलग-अलग हैं?

बहुत से पाठकों को (यदि वे अब तक डटे हुए हैं तो!) लग रहा होगा कि यह तो बाल कि खाल निकाल रहे हैं। हो सकता है यह बात सही हो। पर यदि इन सवालों पर विचार नहीं करेंगे तो कैसे तय करेंगे कि हमें शिक्षा में क्या और कैसे करना चाहिए? क्या बिना समझे कुछ न कुछ करते रहने से काम चल जाएगा? शायद नहीं। शिक्षा के काम को ठीक से करने के लिए इन और इसी तरह के हजारों सवालों का जवाब तो देना पड़ेगा। जो लोग इसका स्पष्ट और भाषा में अभिव्यक्त जवाब नहीं देते वे भी कोई न कोई जवाब मानकर जरूर चलते हैं, चाहे उनको स्वयं भी पता न हो कि वे कौनसी मान्यताओं पर व्यवहार कर रहे हैं। तो क्या शिक्षाकर्मियों (जो लोग शिक्षा में काम करते हैं) के लिए अपनी मान्यताओं पर बिना अभिव्यक्त तरीके से विचार किए काम करते रहना काफी है? या उनको स्पष्ट रूप से सोचने की जरूरत है? मैं यहां यह मानकर चल रहा हूं कि स्पष्ट रूप से सोचने की जरूरत है और सोचने में जितनी ज्यादा स्पष्टता होगी, उनके काम करने का तरीका उतना ही बेहतर होने की संभावना है; उनके काम करने में आत्म-निर्भरता और स्वायत्ता उतनी ही ज्यादा होने की संभावना है।

शिक्षा दर्शन

जैसा कि ऊपर इंगित किया गया है शिक्षा में काम करने में बहुत से मुद्दे उठते हैं। यह मुद्दे काम में आने वाली अवधारणाओं को लेकर हो सकते हैंः शिक्षा का मतलब क्या है? प्रशिक्षण और शिक्षा में क्या फर्क है? पाठ्यक्रम क्या है? शिक्षाक्रम क्या है? आदि।

दूसरी तरह के मुद्दे शिक्षा के उद्देश्यों को लेकर हो सकते हैंः शिक्षा की जरूरत क्या है? क्या शिक्षा के उद्देश्य देश-कालबद्ध होते हैं या चिरन्तन भी हो सकते हैं? क्या कुछ ऐसे और कुछ वैसे हो सकते हैं? नीतियों को लेकर कुछ सवाल हो सकते हैंः क्या सबको समान शिक्षा मिलनी चाहिए? या कुछ को अच्छी और कुछ को कम अच्छी शिक्षा से काम चल जाएगा? शिक्षा की गुणवत्ता और प्रजातंत्र में समानता के सिद्धांत का क्या संबंध है? कुछ सवाल शिक्षा और समाज के रिश्ते को लेकर हो सकते हैं। वास्तव में ऐसे मुद्दों का कोई अन्त नहीं है।

इन मुद्दों पर मत बनाना होता है, निर्णय लेना होता है और उनको क्रियान्वित करना होता है। इस काम में हम बहुत

से तरीकों से सोचते हैं और मानवीय ज्ञान के बहुत से अनुशासनों (डिसिप्लेन्स ऑफ नॉलेज) को काम में लेते हैं जैसे मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, इतिहास, अर्थशास्त्र; आदि-आदि। इसी तरह से सोचने का एक तरीका दार्शनिक भी है।

कुछ लोगों का मानना है कि शिक्षा के अधिकतर मुद्दे और सवाल चार मूल सवालों (जिनका जिक्र ऊपर भी है) के जवाब ढूंढ़ने में, उन जवाबों को संदर्भ विशेष में समझाने में और उनकी क्रियान्विति से निकलते हैं। जरूरी नहीं है कि यह बात ठीक हो, इसकी जांच का हमारे पास आगे बहुत मौका होगा। पर बात शुरू करने के लिए यह सवाल बुरे नहीं हैं। तो ये चार मूल सवाल नीचे लिखे हैं:

1. शिक्षा की जरूरत क्या है? या हम शिक्षा क्यों करना चाहते हैं? या शिक्षा के उद्देश्य क्या होने चाहिएं?
2. शिक्षा की विषयवस्तु क्या हो? या कहें, क्या पढ़ाना-सिखाना चाहिए?
3. जो भी सिखाना चाहते हैं उसे कैसे सिखाना चाहिए?
4. कितना सीखा इसकी जांच कैसे करेंगे?

साफ है कि इन चार सवालों से भी पहले यह सवाल आता है कि हम 'शिक्षा का क्या अर्थ लेते हैं? क्योंकि इसका जवाब दिए बिना बाकी के सवालों के जवाब तो छोड़िए उनके अर्थ समझ पाना भी मुश्किल होगा।

अब सवाल यह उठता है कि शिक्षा दर्शन इन सवालों से जूझने में क्या मदद कर सकता है? एक बार फिर हम सारी विचारधाराओं को एक साथ लेने के बजाय शिक्षा दर्शन की एक सरल, काम-चलाऊ समझ से शुरू कर सकते हैं। एक मान्यता यह है कि शिक्षा दर्शन में मूलतः चार प्रकार के सवाल पूछे जाते हैं। इन सवालों को समझने के लिए एक उदाहरण लेते हैं। जैसे आजकल यह बहुत कहा जाता है कि ''बच्चे अपने ज्ञान का निर्माण स्वयं करते हैं''। मान लीजिए, यह बात आप भूल से किसी शिक्षा दार्शनिक से कह देते हैं, तो बहुत संभव है कि वह आपको नीचे लिखे सवालों में घेरे:

अ. आपकी बात का मतलब/अर्थ क्या है? यहां वह यह जानना चाहता है कि आप कह क्या रहे हैं। अर्थात्, आप बच्चे किसको कह रहे हैं? कितनी आयु तक? ज्ञान किसको कह रहे हैं? अपने मन में ज्ञान के स्वयं निर्माण का क्या अर्थ है? आदि-आदि। इसे हम **अर्थ का सवाल** कहेंगे।

ब. आपको कैसे पता? अर्थात् आपके यह मान लेने के क्या कारण हैं कि बच्चे अपने ज्ञान का निर्माण स्वयं करते हैं? यहां वह आपकी बात के तार्किक आधार या उसके तर्कसंगत होने को जांचना चाहता है। प्रमाण पूछ रहा है। इसे हम **प्रमाण का सवाल** कहेंगे।

स. उपरोक्त दोनों जवाबों में आपने कौनसी मान्यताएं काम में ली हैं? यहां वह यह जानना चाहता है कि आप बच्चों में कौनसी क्षमताओं को मानते हैं कि ज्ञान का स्वयं निर्माण संभव हो सके? इसे हम **पूर्व-मान्यताओं का सवाल** कहेंगे।

द. यदि, आपकी बात मान लें तो इसके नतीजे क्या निकलेंगे? अर्थात् बच्चे अपने ज्ञान का निर्माण स्वयं करते हैं तो पढ़ने या सीखने का अर्थ क्या होगा? यानी पढ़ाने या सिखाने पर इसका क्या असर होगा। इसे हम **निहितार्थों का सवाल** कहेंगे।

तो इस मान्यता के अनुसार शिक्षा दर्शन करने का मतलब मूलतः चार प्रकार के सवाल पूछना है: अर्थ के सवाल, प्रमाण के सवाल, पूर्व-मान्यताओं के सवाल और निहितार्थों के सवाल।

पर शिक्षा दर्शन यह सवाल किन चीजों के बारे में पूछता है? इस बात को समझने के लिए हमें कुछ शब्दावली का निर्माण करना होगा। और बात आरंभ करने के लिए शिक्षा की कोई आरंभिक धारणा लेनी होगी। हम जो भी

धारणा लेंगे उसकी आगे जांच करेंगे, और हो सकता है कि हम उसे बदल दें या नकार ही दें; पर यहां बात शुरू करने के लिए तो कुछ चाहिए ही। तो हम यह मान लेते हैं कि शिक्षा में मूल प्रक्रिया सायास सिखाना (अंग्रेजी शब्द 'टीचिंग' के अर्थ में) और सीखना है। अर्थात् सिखाना और सीखना शिक्षा की मूल प्रक्रिया है। जब समाज में सिखाने और सीखने की प्रक्रिया कुछ व्यापक हो जाती है तो हम इसको शैक्षिक-प्रक्रिया ('एज्युकेशनल प्रेक्टिस' के अर्थ में) कह सकते हैं। तो शैक्षिक प्रक्रिया शिक्षा की प्रथम-दर्जे (फर्स्ट ऑर्डर) की प्रक्रिया है।

जब हम शैक्षिक-प्रक्रिया का विश्लेषण करते हैं, उसकी कमियां और खूबियां देखते हैं, उसके तरीकों को निर्धारित करने की बात करते हैं तो कह सकते हैं कि हम शैक्षिक-सिद्धांत (एज्युकेशनल थ्योरी) की बात कर रहे हैं। ध्यान से देखें तो पाएंगे कि शिक्षा-सिद्धांत, शैक्षिक-प्रक्रिया को एक पूर्व-मान्यता के रूप में लेते हैं, अर्थात् हम कह सकते हैं कि शिक्षा-सिद्धांत दूसरे-दर्जे पर आता है।

पर बात यहां रुकती नहीं, हम शिक्षा-सिद्धांत की भी जांच कर सकते हैं, उसकी आलोचना कर सकते हैं, उसके बारे में ऊपर लिखे चार दार्शनिक सवाल पूछ सकते हैं। मूलतः शिक्षा दर्शन यह काम करता है। तो शिक्षा दर्शन के उद्भव के लिए एक तो शैक्षणिक-प्रक्रिया चाहिए, दूसरा शिक्षा-सिद्धांत चाहिए; तब जाकर शिक्षा-दर्शन शुरू होगा। अर्थात्, शिक्षा दर्शन तीसरे-दर्जे की जांच है। पर शिक्षा-दर्शन का पूरा काम केवल तीसरे-दर्जे में नहीं होता, वह बहुत से दूसरे दर्जे के सवाल भी पूछता है। तो सही बात यह होगी कि शिक्षा दर्शन दूसरे और तीसरे-दर्जे की जांच-पड़ताल है।

इस आलेख के पहले भाग में हम यही कर रहे थे। आप उसे फिर से पढ़ेंगे तो पाएंगे कि उसमें हम अर्थ, प्रमाण, पूर्व-मान्यताओं और निहितार्थों के सवाल पूछ रहे थे। यह सवाल शिक्षा सिद्धांत और शिक्षा-प्रक्रियाओं के बारे में थे। और सवाल पूछने और उनके उत्तर देने में हम युक्ति (आरग्यूमेन्ट) और तर्क (लॉजिक) का उपयोग कर रहे थे। तो मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि शिक्षा दर्शन शिक्षण-प्रक्रियाओं और शिक्षा-सिद्धांत के बारे में दूसरे और तीसरे दर्जे की जांच-पड़ताल का नाम है। इस जांच-पड़ताल में शिक्षा दर्शन आमतौर पर विवेकशील युक्ति और तर्क का सहारा लेता है और मोटे तौर पर चार प्रकार के सवाल पूछता हैः अर्थ, प्रमाण, पूर्व-मान्यताओं और निहितार्थों संबंधी सवाल। शिक्षा दर्शन का सारा ज्ञान इन्हीं आधारों पर बनता है।

हमने 'शिक्षा' शब्द का इस आलेख में बहुत उपयोग किया है। अभी तक इसकी अवधारणा पर कोई बात नहीं की है। इस काम को पहले किए बिना अब और आगे बढ़ाना हमारी विवेचना के लिए घातक हो सकता है। तो अगले लेख में हम शिक्षा की अवधारणा की जांच करेंगे। ◆

टिप्पणीः

इस लेख में शिक्षा के चार मूल सवालों का विचार रॉल्फ टेलर की पुस्तक ''बेसिक प्रिंसिपल्स ऑफ करिक्युलम एण्ड इंस्ट्रेक्शन'' से लिया गया है। इसी तरह शिक्षा दर्शन के चार मूल सवालों का विचार कोर्नेल एम. हाम की पुस्तक ''फिलोसॉफिकल इश्यूज इन एज्युकेशन - एन इंट्रोड्क्शन'' से लिया गया है; हाम केवल तीन सवाल लिखता है, चौथा मैंने जोड़ा है।